Shodh Sangam Patrika
E-ISSN: 3049-0707, Volume 2 | Issue 4 | (Oct – Dec 2025)

हरिशंकर परसाई के व्यंग्य निबंधों में लोकतांत्रिक मूल्य

शुभम थपलियाल
शोधार्थी, हिंदी विभाग, हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल केंद्रीय विश्वविद्यालय
श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखंड

शोध सार-

हरिशंकर परसाई हिंदी व्यंग्य साहित्य के तीक्ष्ण रचनाकार हैं, जिन्होंने स्वतंत्र भारत की सामाजिक-राजनीतिक विसंगतियों को व्यंग्य के माध्यम से उजागर किया। यह शोध-पत्र उनके निबंधों में लोकतंत्र के मूल्यों समानता, स्वतंत्रता, न्याय, सहभागिता, जवाबदेही, पारदर्शिता, धर्मनिरपेक्षता एवं विधि का शासन का विश्लेषण करता है। परसाई का व्यंग्य मार्क्सवादी प्रभावित होते हुए भी विचारधाराओं से ऊपर उठकर भ्रष्टाचार, शोषण और असमानता पर प्रहार करता है। उनका लेखन नकारात्मक नहीं, अपितु सुधारवादी है; विश्वनाथ त्रिपाठी के अनुसार, यह विद्रूपताओं से जूझकर सकारात्मकता अर्जित करता है। 'ठिठुरता हुआ गणतंत्र' में समानता की विडंबना ठंड में ठिठुरते गणतंत्र के रूप में उभरती है। 'सड़े आलू का विद्रोह' स्वतंत्रता को खोखले बुद्धिजीवियों की निष्क्रियता दिखाता है। न्याय 'पांडवों की अख्यायिका' में धन के आगे सत्य की हार बनता है। 'विकलांग श्रद्धा का दौर' सहभागिता की जगह अविश्वास को चित्रित करता है। 'इंस्पेक्टर मातादीन चाँद पर' जवाबदेही की कमी को भ्रष्ट पुलिस तंत्र से जोड़ता है। 'खेती' में पारदर्शिता कागजी योजनाओं में दबकर रह जाती है। 'खुदा से लड़ाई की सज़ा' धर्मनिरपेक्षता पर धर्म-राजनीति के मिश्रण का खतरा उजागर करता है। 'भ्रष्टाचार नियोजन आंदोलन' विधि के शासन को रिश्वतखोर व्यवस्था में बदलता दिखाता है।

परसाई व्यंग्य को सामाजिक कर्म मानते थे, जो हास्य-करुणा से समाज को आत्म-चिंतन के लिए प्रेरित करता है। उनका लेखन नेहरू युग से इमरजेंसी तक के संदर्भों में लोकतंत्र के अंतर्विरोधों को आईना दिखाता है। निष्कर्षतः, परसाई सतर्कता और सक्रियता की माँग करते हैं, ताकि लोकतंत्र आदर्श से यथार्थ बने। उनका योगदान आज भी प्रासंगिक है।

मुख्य शब्द- हरिशंकर परसाई, लोकतंत्र, समाज, समानता, स्वतंत्रता, न्याय, विधि का शासन, पारदर्शिता, जवाबदेही।

प्रस्तावना

हरिशंकर परसाई हिंदी साहित्य के उन दुर्लभ रचनाकारों में से एक हैं जिन्होंने व्यंग्य को सामाजिक-राजनीतिक आलोचना का एक तीक्ष्ण माध्यम बनाया। उन्होंने अपने जीवनकाल में स्वतंत्र भारत की सामाजिक-राजनीतिक विसंगतियों को अपनी लेखनी से न केवल उजागर किया बल्कि उन पर गहन चिंतन भी प्रस्तुत किया। परसाई का व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार करता है, जहाँ वे समाज की विसंगतियों का पर्दाफाश करते हुए, अत्याचारों और शोषण की आलोचना करते हैं। लोकतंत्र, जो समानता, स्वतंत्रता, न्याय, सहभागिता, जवाबदेही, पारदर्शिता, धर्मनिरपेक्षता और विधि का शासन जैसे मूल्यों पर आधारित है, उनके निबंधों में विडंबनापूर्ण रूप से चित्रित होता है। उनके यहाँ आदर्श और वास्तविकता के बीच का अंतर्विरोध प्रमुखता से उभरता है।

स्वतंत्र भारत में लोकतंत्र की स्थापना के बाद, जब नेहरूवादी आदर्शवाद यथार्थ के कठोर धरातल से टकराया, तो परसाई ने इन मूल्यों की खामियों को व्यंग्यात्मक ढंग से उभारा। उनके निबंधों में लोकतांत्रिक मूल्यों की चर्चा प्रमुख है, लेकिन अधिकतर उनकी व्यावहारिक विफलताओं के रूप में। परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि वे भारत

के भविष्य के प्रति नकारात्मक हैं। विफलताओं के चित्रण में वे अत्यंत सकारात्मक और सुधार के प्रति आशावादी नज़र आते हैं। इस विषय में विश्वनाथ त्रिपाठी कहते हैं- "परसाई का व्यंग्य लेखन सकारात्मक है, वह देश के अपने दौर की विविध विद्रूपों और विसंगतियों से जूझकर सकारात्मकता अर्जित करता है।"[1]

परसाई का व्यंग्य मार्क्सवादी प्रभाव से प्रेरित है, जहां वे वर्ग-संघर्ष और शोषण की चर्चा करते हैं, लेकिन वे किसी विचारधारा के प्रति अतिरिक्त झुकाव नहीं दिखाते; बल्कि, वे सभी व्यवस्थाओं को कसौटी पर कसते हैं। उनका लेखन पोस्ट-इंडिपेंडेंस भारत की युग-चेतना का प्रतिबिंब है, जहां स्वतंत्रता के बाद की निराशा, भ्रष्टाचार और सामाजिक असमानता प्रमुख हैं। परसाई की व्यंग्य शैली में अपनापन है, जो पाठक को सीधे संबोधित करती है, मानो कोई मित्र बात कर रहा हो, लेकिन इस अपनत्व के पीछे तीखी आलोचना छिपी है। वे व्यंग्य को सामाजिक कर्म मानते थे, जहां हास्य और करुणा का मिश्रण समाज को आत्म-चिंतन के लिए प्रेरित करता है। इस शोध-पत्र का उद्देश्य परसाई के व्यंग्य निबंधों में उल्लिखित लोकतांत्रिक मूल्यों का गहन विश्लेषण करना है। हम प्रत्येक मूल्य समानता, स्वतंत्रता, न्याय, सहभागिता, जवाबदेही, पारदर्शिता, धर्मनिरपेक्षता और विधि का शासन को अलग-अलग जांचेंगे, जिसमें उनके निबंधों से विशिष्ट उद्धरणों और सामाजिक-राजनीतिक संदर्भों का सहारा लिया जाएगा। यह विश्लेषण दिखाएगा कि कैसे परसाई ने लोकतंत्र की आदर्श छवि को वास्तविकता के आईने में दिखाकर समाज को बेहतर बनाने के लिए प्रेरित किया।

लोकतांत्रिक मूल्यों के संदर्भ में, परसाई का लेखन दिखाता है कि कैसे ये मूल्य, जो संविधान की आत्मा हैं, व्यावहारिक रूप में भ्रष्टाचार और वर्ग-शोषण का शिकार हो जाते हैं। इस पत्र में हम इन पहलुओं को ऐतिहासिक संदर्भों के साथ जांचेंगे, जहां नेहरू युग की समाजवादी आकांक्षाएं इंदिरा गांधी के इमरजेंसी काल में टूटती दिखाई देती हैं।

समानता

लोकतंत्र का मूल आधार समानता है, जहां सभी नागरिकों को जाति, वर्ग, लिंग या धर्म के आधार पर बिना भेदभाव के अवसर मिलने चाहिए। वास्तविक लोकतंत्र तभी स्थापित हो सकता है जब लोकतंत्र केवल एक राजनीतिक व्यवस्था मात्र बनकर न रहे बल्कि एक जीवन-दर्शन बन जाए। राजनीतिक लोकतंत्र की सफलता के लिए अत्यंत आवश्यक है- सामाजिक लोकतंत्र की स्थापना।

"एक लोकतांत्रिक सरकार के लिए एक लोकतांत्रिक समाज की आवश्यकता होती है। अगर सामाजिक लोकतंत्र न हो तो लोकतंत्र का औपचारिक ढाँचा निरर्थक और वास्तव में अनुपयुक्त होगा।"[2]

परसाई के व्यंग्य में समानता की यह अवधारणा विडंबनापूर्ण रूप से प्रस्तुत होती है, जहां समाज में व्याप्त वर्गीय, जातीय और आर्थिक असमानता को तीखे व्यंग्य से उजागर किया गया है। उनके निबंध 'ठिठुरता हुआ गणतंत्र' में गणतंत्र को ठंड में ठिठुरते व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है, जो अमीरों की गर्मी और गरीबों की ठंड की असमानता को प्रतीकात्मक रूप से दर्शाता है।

"रेडियो टिप्पणीकार कहता है- घोर करतल-ध्वनि हो रही है। मैं देख रहा हूँ, नहीं हो रही है। हम सब तो कोट में हाथ डाले बैठे हैं। लेकिन हम नहीं बजा रहे हैं, फिर भी तालियाँ बज रही हैं। मैदान में जमीन पर बैठे वे लोग बजा रहे हैं, जिनके पास हाथ गरमाने के लिए कोट नहीं है। लगता है, गणतंत्र ठिठुरते हुए हाथों की तालियों पर टिका है। गणतंत्र को उन्हीं हाथों की तालियाँ मिलती हैं, जिनके मालिक के पास हाथ छिपाने के लिए कपड़ा नहीं है।"[3] यहां ठंड का प्रतीक गरीबी और असमानता का है, जहां गणतंत्र दिवस की परेड में चमक-दमक है, लेकिन आम आदमी ठिठुरता रहता है। यह व्यंग्य स्वतंत्र भारत की आर्थिक असमानता पर है, जहां नेहरूवादी समाजवाद के बावजूद धनिक वर्ग का वर्चस्व बना रहा। यह व्यंग्य 1960-70 के दशक के भारत पर है, जहां

लाइसेंस राज ने असमानता को बढ़ावा दिया। परसाई का व्यंग्य सामाजिक न्याय पर केंद्रित है, जहां वे जाति और वर्ग की असमानता पर करारा प्रहार करते हैं।

स्वतंत्रता

स्वतंत्रता लोकतंत्र का मूलभूत मूल्य है, जो अभिव्यक्ति, विचार और आंदोलन की आजादी सुनिश्चित करता है। परसाई के व्यंग्य में यह स्वतंत्रता के बाद की बंधनों के रूप में उभरती है, जहां राजनीतिक स्वतंत्रता आर्थिक और सामाजिक गुलामी से अलग नहीं हो पाती। भारतीय संविधान ने प्रत्येक नागरिक को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता दी। इसका परिणाम यह हुआ कि देश में आंदोलनकारी और बुद्धिजीवी वर्ग का उदय हुआ जिनका कार्य अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के माध्यम से विसंगतियों को उठाना था परंतु हमारा बौधिकवर्ग सडाँध ग्रस्त हो गया है। वह तनावपूर्ण स्थिति में जीता है, झूठा आत्म सम्मान रखता है तथा विद्रोह का दिखावा करता है। 'सड़े आलू का विद्रोह' में परसाईजी ने प्रतीकात्मक रूप में तीखा व्यंगय किया है- “मैंने कहा 'मैं तुम्हारे प्रति श्रद्धा रखता हूँ। अच्छे आलू सचमुच पतित हैं जो पहले बिक गये। बाजार में तुम भी हो, मगर सड़े होने के कारण तुम्हारा आत्म-सम्मान, अहंकार और विद्रोह बचा है। तुम्हारी जय हो । तुमने सड़ेपन के कारण बुद्धिजीवी वर्ग की लाज रख ली' इतने में एक सस्ते होटलवाला आया और कुंजड़े से एक रूपये में सारे सड़े आलू ले गया । सड़ा विद्रोह एक रूपये में चार किलो के हिसाब से बिक जाता है।” [4]

यहाँ व्यंग्यकार ने आलू को प्रतीक बनाकर सस्ते, निठल्ले और खोखले बुद्धजीवियों पर व्यासस्तुति के माध्यम से व्यंग्य किया हैं।

मध्यमवर्गीय आदमी की यही स्थिति पर परसाईजी ने कटु व्यंग्य प्रहार 'एक मध्यमवर्गीय कुत्ता' कहानी में किया है- “यह कुत्ता उन सर्वहारा कुत्तों पर भौकता भी है और उनकी आवाज भी मिलाता है । कहता है - मैं तुम में शामिल हूँ। उच्चवर्गीय झूठा रौब भी और संकट के आभास पर सर्वहारा के साथ भी यह चरित्र है इस कुत्ते का । यह मध्यमवर्गीय चरित्र है । यह मध्यमवर्गीय कुत्ता है । उच्चवर्गीय होने का ढोंग भी करता है और सर्वहारा के साथ मिलकर भौंकता भी है ।” [5]

न्याय

न्याय लोकतंत्र की रीढ़ है, जहां सभी को समान न्याय मिलना चाहिए। लेकिन परसाई के निबंधों में न्याय अमीरों के पक्ष में झुका हुआ दिखाई देता है। पांडवों की अख्यायिका के माध्यम से कोर्ट- कचहरी पर करारा व्यंग्य करते हुए परसाई जी लिखते हैं – “पांडव अगर जैसे- तैसे कोर्ट-फीस चुका भी देते, तो वकीलों की फीस कहाँ से देते, गवाहों को पैसे कहाँ से देते ? और कचहरी में धर्मराज का क्या हाल होता? वे 'क्रास एक्जामिनेशन के पहिले ही झटके में ही उखड़ जाते। सत्यवादी भी कही मुकदमा लड़ सकते ! कचहरी की चपेट में भीम की चर्बी उतर जाती। युद्ध में तो 18 दिन में फैसला हो गया, कचहरी में 18 साल भी लग जाते। और जीतता दुर्योधन ही, क्योंकि उसके पास पैसा था। सत्य सूक्ष्म है, पैसा स्थूल है। न्याय- देवता को पैसा दिख जाता है, सत्य नहीं दिखता। शायद पांडव मुकदमा लड़ते- लड़ते मर जाते क्योंकि दुर्योधन पेशी बढ़वाता जाता। पांडवों के बाद उनके बेटे लड़ते, फिर उनके बेटे। बड़ा अच्छा किया कृष्ण ने जो अर्जुन को लड़वाकर 18 दिनों में फैसला करा लिया। वरना आज कौरव-पांडव के वंशज किसी दीवानी कचहरी में मुकदमा लड़ते होते।” [6]

यह व्यंग्य भ्रष्ट न्याय तंत्र पर है।परसाई का व्यंग्य सामाजिक न्याय पर केंद्रित है, जहां वे भ्रष्टाचार और पक्षपात को उजागर करते हैं। इमरजेंसी काल में उनकी आलोचना और गहन हुई।

सहभागिता

सहभागिता लोकतंत्र में जनता की सक्रिय भूमिका है, लेकिन परसाई इसे निष्क्रियता के रूप में दिखाते हैं। स्वातंत्र्योत्तर भारत में सहभागिता नहीं बल्कि एक दूसरे पर गहरा अविश्वास नजर आता है। आज स्थिति यह है कि कोई किसी पर विश्वास नहीं कर सकता है। इसी बात को परसाईजी ने 'विकलांग श्रद्धा का दौर' में तीखा प्रहार किया है- “और फिर श्रद्धा का यह दौर है देश मे? जैसा वातावरण है, उसमें किसी को भी श्रद्धा रखने में संकोच होगा। श्रद्धा पुराने अखबार की तरह रद्दी में बिक रही है। विश्वास की फसल को तुषार मार गया । इतिहास में शायद कभी किसी जाति को इस तरह श्रद्धा और विश्वास से हीन नहीं किया गया होगा। जिस नेतृत्व पर श्रद्धा थी, उसे नंगा किया जा रहा है। जो नेतृत्व आया है, वह उतावली में अपने कपड़े खुद उतार रहा है... कानून से विश्वास गया। अदालत पर ही शंका की जा रही है। डॉक्टरों को बीमारी पैदा करनेवाला सिद्ध किया जा रहा है। कहीं कोई श्रद्धा नहीं विश्वास नहीं।” [7] परसाईजी ने इस कहानी के माध्यम से स्वार्थान्धता का वर्णन किया है जो हमे समाज में दिखाई देती है। परसाई का व्यंग्य भारतीय लोकतंत्र के अंतर्विरोधों पर है, जहां जनता उदासीन है और इसका फायदा शोषक वर्ग उठाता है। उनका लेखन जनता को सक्रिय सहभागिता के लिए प्रेरित करता है।

जवाबदेही

जवाबदेही में राजनेता जनता के प्रति उत्तरदायी होते हैं, लेकिन परसाई इसे भ्रष्टाचार से जोड़ते हैं। 'ठिठुरता हुआ गणतंत्र' में नेता जवाबदेही से बचते हैं। परसाई का व्यंग्य सामाजिक-राजनीतिक संदर्भों में जवाबदेही की कमी को उजागर करता है। जब जवाबदेही नहीं होगी तो उसका सबसे बड़ा दुष्परिणाम भ्रष्टाचार का उदय है। इंस्पेक्टर मातादीन चाँद पर कहानी में जवाबदेही की कमी के कारण पुलिस एक भ्रष्टतंत्र के निर्माण के लिए प्रेरित होती है-

“कम तनख्वाह दोगे, तो मुलाजिम की गुजर नहीं होगी। उसे ऊपरी आमदनी करनी ही पड़ेगी और ऊपरी आमदनी तभी होगी जब वह अपराधी को पकड़ेगा। हमारे रामराज्य के स्वच्छ और सक्षम प्रशासन का यही रहस्य है। अर्थात काम कुछ भी हो रिश्वत दोगे तो वह जल्द होगा। परसी ने रिश्वत के जरिए प्रशासन में चल रही इस धाँधली का चित्रण बहुत ही सक्षम रूप में किया है।” [8]

एक निबन्ध में भ्रष्टाचारियों की निर्भीकता का बयान करते हुए बताते हैं कि पहले लोग गलत काम करते थे। साफ खुलकर नहीं आते थे। अब डंके की चोट पर कहते हैं, बताते हैं कि 'परसाई जी, मेरी लड़की ने एंट्रेंस का इम्तिहान दिया है। उत्तर-पुस्तिका अमुक जी के पास है। आप उनको जानते हैं। कृपया नम्बर बढ़वा दीजिए।' यह जमाने की दुर्गति का पर्दाफाश करने का पारम्परिक सामान्य ढंग हुआ। परसाई यहीं तक नहीं रुकते, आगे कहते हैं: 'ठीक है। है तो भ्रष्टाचार की हिम्मत। लेकिन कौन जाने, इस लड़की की शादी दहेज के कारण न हो पा रही हो ! हो सकता है, कई बहनें हों! हो सकता है, बहन की नौकरी खत्म हो गई हो!' गलत काम करने वाले भ्रष्टाचारी की मजबूरी की टटोल पहले नहीं थी। परसाई केवल भ्रष्टाचार पर टिप्पणी करके आगे नहीं बढ़ जाते बल्कि यह चिंता भी करते हैं कि वह व्यक्ति भ्रष्टाचार क्यों करता है। यही आत्मीयता परसाई के व्यंग्य को लोकतांत्रिक मूल्य-बोध से जोड़ती है।

पारदर्शिता

पारदर्शिता भ्रष्टाचार की अनुपस्थिति है, लेकिन परसाई के व्यंग्य में यह दिखता है। वे राजनीतिक विचारधाराओं और सामाजिक मानदंडों पर व्यंग्य करते हैं, जहां पारदर्शिता की कमी व्याप्त है। सूचना का अधिकार के कारण व्यवस्था में पारदर्शिता लाने का प्रयास अवश्य हुआ है लेकिन इसे भी अपेक्षित सफलता नहीं मिल सकी है। पारदर्शिता की इस कमी के कारण सारा विकास कार्य केवल कागज़ पर ही सीमित हो जाता है। देखिए – “जब

कागज आ गया, तो फाइलें बना दी गयी । प्रधानमन्त्री सचिवालय से फाइल खाद्य विभाग को भेजी गयी। खाद्य विभाग ने उस पर लिखकर अर्थ विभाग को भेज दिया। अर्थ विभाग में फाइल के साथ नोट नत्थी किये गये और उसे कृषि विभाग में भेज दिया गया। कृषि विभाग में उसमें बीज और खाद्य डाल दिये गये और बिजली विभाग में उसमें बिजली लगायी, सिंचाई विभाग में फाइल पर पानी डाला गया । इस तरह दस लाख एकड़ कागज की फाइलों की फसल पककर फूड़ कोर्पोरेशन के पास पहुँच गयी। एक दिन एक किसान-सरकार से मिला और उसने कहा 'हुजूर, हम किसानों को आप जमीन, पानी और बीज दिला दीजिए तो हम देश के लिए पूरा अनाज पैदा कर देंगे।' सरकारी प्रवक्ता ने जवाब दिया 'अन्न की पैदा वार के लिए किसान की जरुरत नहीं है। हम दस लाख एकड़ कागज पर अन्न पैदा कर रहे हैं।" [9]

धर्मनिरपेक्षता

धर्मनिरपेक्षता में राज्य धर्म से अलग रहता है, लेकिन परसाई के निबंधों में धर्म और राजनीति का मिश्रण व्यंग्य का विषय है। धर्म के नाम पर बहुजन समाज का शोषण करनेवाले धार्मिक नेताओं पर व्यंग्य करते हुए परसाई जी लिखते हैं – "राज सत्ता, अर्थ-सत्ता और धर्म-सत्ता जब बहुजन समाज को यथास्थिति में रखना चाहते हैं, शोषण की परंपरा को बनाये रखना चाहते हैं, तब यह काम खुदा या भगवान के मारफत, भगवान के नाम से करते हैं। अयातुल्ला खोमैनी खुदा का हुक्म सुनाता है और जिया - उल- हक मस्जिद से करों की घोषणा करता है।"[10] यह शोषण प्रक्रिया सिर्फ मुस्लिम धर्म में ही है ऐसी बात नहीं है, तो हिंदू, बौद्ध, जैन आदि सभी धर्मों में इस प्रकार से लोगों का शोषण किया जाता है। लोकतंत्र के सफल संचालन के लिए धर्मनिरपेक्षता एक अनिवार्य मूल्य है। यदि राजनीति में धर्म का मिश्रण नहीं रुकता तो व्यवस्था लोकतंत्र की शक्ल में थियोक्रेसी का ही दूसरा रूप बनकर रह जाती है।

परसाई ईरान के उदाहरण के माध्यम से भारत को इसी खतरे के प्रति सचेत करते हैं- "धार्मिक नेता इस्लाम के नाम पर ईरानियों का अमानवीकरण करने में लगे हैं। रेडियों पर संगीत बंद कर दिया गया है। टेलीविजन पर स्त्री दिखाने का सवाल ही नहीं है। कविता भी मारी जायेगी। संस्कृति का नाश होगा- धर्मांधों के हाथ। ईरानी क्रांतिकारी स्त्री के हाथ में राइफल होती है और चेहरे पर चादर।"[11] धर्मनिरपेक्षता के अभाव की वजह से इस प्रकार की असंगत स्थिति उत्पन्न होती है।

विधि का शासन

विधि का शासन में सभी कानून के समक्ष समान हैं, लेकिन परसाई इसे खोखला बताते हैं। हमारा पुलिस विभाग रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार का केन्द्र बना हुआ है। सबसे ज्यादा ऊपर की आमदनी इसी विभागवालों को होती है। इसी बात को स्पष्ट करती 'भ्रष्टाचार नियोजन आंदोलन' है। इस कहानी में हमारी पुलिस अपराधी से साँठ और करके पैसे लेती है, शिकायत करनेवाले से भी पैसे पैंठती है। इससे एक ओर विकृती ने जन्म लिया है "जहाँ ऊपरी आमदनी ज्यादा मिलती है ऐसे थानों मे नौकरी पाने के लिए पुलिस कर्मचारियों को भी रिश्वत देनी पडती है। यह कहना अनुचित नहीं कि उन थानों की नीलामी होती है "अभी उस दिन एक पुलिस इन्स्पेक्टर मिला। वह किसी छोटे गाँव में थाने पर तैनात है। कहने लगा वहाँ हाईस्कूल नहीं है, बच्चों की पढ़ाई में कठिनाई होगी। मैंने कहा कि अमुक कस्बे में तबादला कर लो तो वह बोला- वह थाना तो तीन हज़ार का हैं। बड़ा महँगा है। यह थाना हजार का है फिर भी अच्छे हैं। साधो इस तरह थानो की कीमत बँधी हुई हैं।"[12] यहाँ परसाईजी ने पुलिस विभाग में व्याप्त रिश्वतखोरी, एवं भ्रष्टाचार की चरमसीमा को अपने व्यंग्य का लक्ष्य बनाकर विद्रुप स्थिति का यथार्थ वर्णन किया है। कानून के हर संस्थान में यही स्थिति है।

निष्कर्ष

परसाई के व्यंग्य में लोकतांत्रिक मूल्य विडंबनापूर्ण हैं, लेकिन उनका उद्देश्य समाज को सुधारना है। उनका योगदान आज भी प्रासंगिक है, जहां लोकतंत्र चुनौतियों का सामना कर रहा है। परसाई हमें याद दिलाते हैं कि लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा के लिए निरंतर सतर्कता जरूरी है। नई सकारात्मकता या निर्मिति यथास्थिति को ध्वंस करती है। "परसाई जी के व्यंग्य की विध्वंसकता सकारात्मकता से सार्थक होती है। परसाई ने व्यंग्य के माध्यम से मॉडल चरित्र निर्मित किये हैं। अभावग्रस्त विषमता से प्रताड़ित पात्रों की मानवीयता- मानवीयता ही नहीं, उनकी जिजीविषा चित्रित की है। ऐसे पात्र मानो आत्मग्रस्त सुखी पात्रों पर प्रहार करते हुए उनका मजाक उड़ाते, हैं उनकी अपदार्थता समेकित करते हैं।"[13]

संदर्भ ग्रंथ-

1. त्रिपाठी, विश्वनाथ, देश के इस दौर में, राजकमल प्रकाशन, 1989, पृ. 9
2. डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर : राइटिंग्स एंड स्पीचेज़ वॉल्यूम-1, डॉ. अंबेडकर फाउंडेशन, पृ.222
3. परसाई, हरिशंकर, ठिठुरता हुआ गणतंत्र, राजकमल प्रकाशन, पृ. 2
4. सं. कमला प्रसाद, सड़े आलू का विद्रोह, परसाई रचनावली -01, राजकमल प्रकाशन पृ. 304
5. परसाई, हरिशंकर, विकलांग श्रद्धा का दौर, राजकमल प्रकाशन, पृ. 11
6. सं. कमला प्रसाद, परसाई ग्रंथावली-03, राजकमल प्रकाशन, पृ. 206
7. सं. कमला प्रसाद, विकलांग श्रद्धा का दौर, परसाई रचनावली-02, राजकमल प्रकाशन, पृ.230
8. सं. कमला प्रसाद, इंस्पेक्टर मातादीन चाँद पर, परसाई रचनावली-02, हरिशंकर परसाई, 137
9. सं. कमला प्रसाद, खेती, परसाई रचनावली-02, राजकमल प्रकाशन, 335
10. सं कमला प्रसाद, खुदा से लड़ाई की सज़ा, परसाई रचनावली खंड-04, पृ. 143
11. सं कमला प्रसाद, इस्लाम के कोड़े, परसाई रचनावली-03, पेज 152
12. सं. कमला प्रसाद, परसाई रचनावली-05, भ्रष्टाचार नियोजन आंदोलन, पेज
13. त्रिपाठी, विश्वनाथ, देश के इस दौर में, राजकमल प्रकाशन, पेज 10